बौद्ध जीवन पद्धति

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

बौद्ध जीवन पद्धति

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

दीक्षा भूमि, नागपुर.

प्रकाशक :

मंत्री :

भिक्खु निवास प्रकाशन,

दीक्षा भूमि,

ना ग पु र.

❋

कीमत ७५ पैसे

❋

द्वितीय संस्करण २000

❋

बुद्धाब्द २५१२

❋

मुद्रक :

टी. आर. मेश्राम

अरुणदत्त मुद्रण,

कॉटन मार्केट, नागपुर-२.

बोधिसत्व चरित

बाबासाहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर

की

पुण्य स्मृति में

विषयानुक्रम

दो शब्द

जिस समय सम्राट अशोक के पुत्र भिक्षु महेन्द्र लंका में धर्म प्रचारार्थ गये तो उस समय के लंका के राजा देवानंप्रिय तिष्य ने महास्थविर महेद्र के साथ आये हुए भिक्षुओं की ओर संकेत करके कहा :–

"क्या भारत में ऐसे और भी भिक्षु हैं?"

महामति महेन्द्र का उत्तर था–

"जम्बुदीप काषाय वस्त्र से प्रज्वलित है।"

एक समय था कि भारत में बौद्ध-भिक्षु थे, बौद्ध-भिक्षुणियां, बौद्ध उपासक तथा बौद्ध-उपासिकाएं थी; भिक्षुओं, भिक्षुणियों के रहने तथा उपामक-उपासिकाओं के वहां जाकर बौद्ध उपदेश सुनने के लिए पृथक-पृथक विहार थे।

किन्तु ऐतिहासिक कारणों के परिणाम स्वरुप इधर कुछ शताब्दियों से भारत में न बौद्ध-भिक्षु तथा भिक्षुणियां ही रहीं, न उपासक उपासि-काएं ही रही और न बौद्ध-विहार ही रहे।

पिछले साठ-सत्तर वर्षो से इधर पुन: भारत में शनै: शनै: बौद्ध-धर्म का प्रचार होना आरंभ हुआ। किन्तु गत १४ अक्टूबर १९५६ को नागपुर में जब बाबा साहब डॉ० भिमराव अम्बेडकर ने पूज्यचरण चन्द्रमणी महास्थविर से दीक्षा ग्रहण की और उनके साथ लाखों अन्य जनों ने महास्थविर तथा बाबा साहब से दीक्षा ग्रहण की, उस समय से तो भारत में नया धर्मचक्र–प्रवर्तन सा ही हो गया।

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद भारत में पुन: बौद्ध धर्म की स्थापना और प्रसार होगा—बौद्धों का यह विश्वास अक्षरश: सत्य सिद्ध हुआ।

६ दिसम्बर १९५६ को जो न होना था सो हो गया। बाबासाहब का पंचस्कन्धात्मक[1] शरीर भारत के जन-जन को रोता-बिलखता छोड़ निर्वृत्त हो गया। ७ दिसम्बर को उनकी चिता ही प्रज्वलित नहीं हुई,

---

१. रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान यही मानव शरीर के पांच स्कंध हैं।

भारत में बौद्ध धर्म की स्थापना और प्रसार का कार्य भी प्रज्वलित हो उठा। अब किस की सामर्थ्य हैं कि इस धारा को रोक सके ! और 'बहुत जनों के हित तथा बहुत जनों के सुख के लिए' आरम्भ हुए इस कल्याणकारी आन्दोलन को कोई भी जन-हित कामी रोकना भी क्यों चाहेगा ? हर कोई इसमें सहायक ही होगा तथा हो रहा है।

ज्यों ज्यों बौद्ध विचार-धारा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है और ज्यों-ज्यों दिनों दिन भारत के हजारों लाखों नर-नारी " धर्म-दीक्षा " ग्रहण कर बौद्ध बन रहे है, त्यों-त्यों इस प्रकार की एक छोटी सी पुस्तिका की नितान्त आवश्यकता अनुभव होती जा रही है, जो बौद्धों की " जीवन-पद्धति " के बारे में प्राथमिक जानकारी देने का काम कर सके। वैसी ही छोटीसी पुस्तिका लिखनेका यह विनम्र प्रयास है।

इस संग्रह की रचना में एक सुनिश्चित मान्यता रही है। आज के बौद्धों की धर्म-दीक्षा कहीं कहीं 'धर्मान्तर' कही और समझी जाती है जो एक दृष्टि से यथार्थ भी है और दूसरी दृष्टि से अयथार्थ भी। हमारी मान्यता है कि कुछ शताब्दियों पहले भारत में जो करोडों बौद्ध थे, उनका अधिकांश आज का भारतीय "अछूत" समाज है। जो तथाकथित "अछूत" आज बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो रहे हैं, वे एक प्रकार से अपने पूर्वजों के ही धर्म को नये सिरे से अपना रहे हैं।

यह कितनी विचित्र बात है कि भारत के बाहर के लोग तो बौद्ध धर्म को एक भारतीय धर्म मानते और जानते हैं, किन्तु बहुत से अज्ञ भारतीय इसे सिहल, स्याम, बर्मा आदि देशों का धर्म मानकर इस के प्रति एक अभारतीय-धर्म जैसी भावना रखते हैं।

इस पुस्तिका में जो 'बौद्ध जीवन- पद्धति' है, वह सम्पूर्ण रूप से भारतीय है। आशा है इसी दृष्टि से यह सभी बौद्ध-बन्धुओं द्वारा अपनायी जायगी।

पूज्य महास्थविर बोधानन्दजी रचित बौद्ध-चर्या-पद्धति का मैं बहुत ऋणी हूं क्योंकि वह अनुपम ग्रन्थ ही मेरा मार्ग-दर्शक सिद्ध हुआ है।

त्रिरत्नानुभाव से सभी प्राणी सुखी रहें।

आनन्द कौसल्यायन

धर्म दीक्षा

सामान्यतया माता-पिता का धर्म ही सन्तान का धर्म मान लिया जाता है। किन्तु यथार्थ में धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसे हर किसी को स्वयं सोच विचार कर अंगीकार करना चाहिए। भारत में जो भी कोई बौद्ध-दीक्षा ग्रहण करने का इच्छुक हो वह नीचे लिखी अत्यन्त सरल विधि से बौद्ध-दीक्षा ग्रहण कर सकता है।

जिस गांव या नगर में वह रहता हो वा वे रहते हों यदि उस बस्ती में कोई ऐसा विहार हो जहां कोई बौद्ध भिक्षु या श्रामणेर रहते हों तो उस विहार में जाकर बौद्ध-दीक्षा ग्रहण करना योग्य है।

यदि उस गांव या नगर में कोई विहार और भिक्षु या श्रामणेर न हों तो आसपास से जहां कहीं से भी कोई भिक्षु या श्रामणेर निमन्त्रित किये जा सकें उन्हें निमन्त्रित कर उनसे धर्म-दीक्षा ग्रहण करना ठीक है।

यदि नगर में कोई विहार भी न हो और यदि कोई भिक्षु या श्रामणेर भी प्राप्त न हों तो किसी अनागरिक[1] धर्मप्रचारक से धर्म-दीक्षा ग्रहण करना ठीक है।

यदि कोई अनागरिक बौद्ध-धर्म प्रचारक भी न मिले तो किसी ज्येष्ठ सदाचारी बौद्ध-उपासक से भी धर्म-दीक्षा ग्रहण करना ठीक है।

यहां किसी भी भिक्षु से धर्म-दीक्षा ग्रहण करने की विधि दी जा रही है :—

सर्वप्रथम आचार्य-भिक्षु का अनुकरण करते हुए सम्यक् सम्बुद्ध भगवान बुद्ध को प्रणाम करना चाहिए।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स।

(उन भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्ध को नमस्कार है।)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स।

---

१. (गृहत्यागी)

(उन भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्ध को नमस्कार है।)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ।

(उन भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्ध को नमस्कार है।)

इसके बाद आचार्य–भिक्षु का अनुकरण करते हुए त्रिशरण ग्रहण करना चाहिए।

त्रिशरण

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघ सरणं गच्छामि ।

मैं बुद्ध की शरण जाता हूं ।
मैं धर्म की शरण जाता हूं ।
मैं संघ की शरण जाता हूं ।

दुतियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, संघं सरणं गच्छामि ।

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूं ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूं ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूं ।

ततियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।

तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूं ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूं ।
तीसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूं ।

तदनन्तर पंचशील ग्रहण करना चाहिए :-

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

३. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

५. सुरामेरय मज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

अर्थ :

१. मैं प्राणी हत्या से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

२. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

३. मैं पर-स्त्री गमन, वेश्या-गमन आदि दुराचारों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

४. मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

५. मै सुरामेरय आदि नशीली चीजों, प्रमाद के कारणों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

यही त्रिशरण पंचशील ग्रहण करना बौद्ध दीक्षा-विधि है और यही बौद्ध-गृहस्थों अथवा उपासकों के नित्यशील हैं ।

अष्टमी, अमावस्या पूर्णिमा आदि महिने के विशिष्ट चार दिनों में, जब गृहस्थों को अपने कामों से छुट्टी रहती है तो उक्त पंचशीलों में अन्य तीन अतिरिक्त शील मिलाकर "अष्टशील" भी ग्रहण किये जाते है ।

अष्टशील ग्रहण करने की विधि भी पंचशील ग्रहण करने की तरह ही है । शिष्य आचार्य-भिक्षु के उपदेशानुसार नमस्कार तथा त्रिशरण के अनन्तर अष्टशील ग्रहण करता है । निम्न-लिखित तीन शील पूर्वोक्त पांच शीलों के साथ मिलकर उन्हें अष्टशील बनाते हैं ।

६. विकालभोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

७. नच्च - गीत-वादित-विसूक-दस्सन - माला गंध - विलेपन धारण मंडन-विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

८. उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

अष्ट शील ग्रहण करते समय तीसरे शील के स्थानपर यह शील ग्रहण करना चाहिए

अब्रह्मचरिया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

(मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।)

अर्थ—६. मैं ' विकाल ' भोजन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं । (दिन के बारह बजे के बाद से दूसरे दिन सूर्योदय तक का समय ' विकाल ' कहलाता है ।)

७. मैं नाचने, गाने-बजाने, मेले-तमाशे देखने, माला सुगन्धित लेप आदि धारण करने तथा शरीर श्रृंगार के लिए किसी भी प्रकार के आभूषण आदि से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

८. मैं बहुत ऊंची गुद-गुदी विलासिता को बढानेवाली शय्याओं पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं ।

यह पंचशील और अष्टशील ही गृहस्थ श्रावकों अथवा उपासकों के शील हैं ।

इनके अतिरिक्त कोई-कोई सद्‌गृहस्थ श्रामणेरों के दस शील धारण कर दस शील उपासक भी बन जाते हैं । श्रामणेरों (सामान्यतः भावी भिक्षुओं) तथा भिक्षुओं के शीलों का वर्णन यहां अस्थाने समझ नहीं दिया जा रहा है ।

पूजा-विधि

(बुद्ध, धर्म, संघ की वंदना)

किसी भी लोकोत्तर पुरुष की जो पूजा की जाती है वह क्यों की जाती है ? वह इसीलिए की जाती है कि उसका आदर्श-चरित्र हमारे अपने चरित्र को ऊंचा उठाये और उसके कल्याणकारी उपदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करना हमें सदाचारी बनाये ।

क्योंकि लोक में त्रिशरण से बढ़कर और कुछ भी शरण-स्थान नहीं है, इसलिए बौद्ध लोग केवल त्रिशरण ही ग्रहण करते हैं। धम्मपद में कहा है–

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च
आरामरुखचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता
नेतं वो सरणं खेमं, नेतं सरणमुत्तमं

अर्थ–(भयभीत लोग नाना प्रकार के वृक्षों, जंगलों, पर्वतों आदि की शरण ग्रहण करते हैं। लेकिन ये शरण उत्तम नहीं हैं। ये शरण कल्याणकारी नहीं है ।)

कृष्ण उपदिष्ट माने जानेवाली गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं :–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः । गीता

अर्थ–(हे अर्जुन ! सब धर्मों को त्याग कर एक मेरी ही शरण आ । मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूंगा । शोक मत कर ।)

भगवान बुद्ध इस से बहुत पहले ही अपने अनुयायियों को सच्ची आत्म-निर्भरता का उपदेश दे गये थे–

"आनन्द ! अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा"

(महापरिनिब्बानसुत्त)

अर्थ–हे आनन्द ! तुम अपने प्रदीप आप बनो, अपनी शरण जाओ।

"तुम्हेहि किच्च आतप्प अक्खातारो तथागता" "धम्मपद"

(काम तो तुम्हें ही करना है, तथागत तो सिर्फ राह बतानेवाले है।)

इसलिए यदि हमें शारीरिक अथवा वाणी की बुरी आदतों से मुक्त होना है तो उसका एक मात्र उपाय बुद्ध, धर्म तथा संघ की वंदना और ध्यान-भावना करना ही है।

पूजा अथवा त्रिरत्न वंदना और ध्यान भावनाओं की विधि इस प्रकार है :–

यदि बस्ती में कोई विहार हो तो वहां शुद्ध वस्त्र पहनकर जाना चाहिए और भगवान बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख एकाग्रचित्त बैठकर वंदना और ध्यान–भावना करनी चाहिए।

यदि बस्ती में कोई विहार आदि न हो तो अपने ही घर के किसी एकान्त कोने में भगवान बुद्ध की मूर्ति अथवा चित्र के सम्मुख एकाग्र मन से बैठकर त्रिरत्न-वंदना और ध्यान-भावना करनी चाहिए।

यात्रा आदि में वैसा भी सुयोग न लगे तो सोने से उठने पर और सोने के समय अपनी शय्या पर ही बैठकर त्रिरत्न-वंदना और ध्यान-वंदना करनी चाहिए।

बुद्ध–वंदना

इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासंबुद्धो विज्जाचरणसंपन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्थादेव-मनुस्सानं बुद्धो भगवाति। बुद्धं जीवितपरियन्तं सरणं गच्छामि ॥

अर्थ—(पूर्व बुद्धों की तरह यह भगवान भी सबके पूज्य, सम्यक् सम्बुद्ध हैं। विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगति वाले हैं। लोगों का रहस्य जाननेवाले हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, कुमार्गगामी मनुष्यों का सारथी के समान दमन करनेवाले हैं और देवताओं तथा मनुष्यों के शिक्षक हैं। मैं अपने जीवन-पर्यन्त बुद्ध की शरण जाता हूं।)

१. ये च बुद्धा अतीता च, ये च बुद्धा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये बुद्धा, अहं वंदामि सब्बदा ।।

अर्थ—भूतकाल में जितने बुद्ध हुए है और भविष्यत् काल मे जितने भी बुद्ध होगे तथा इस वर्तमान काल के भी जितने बुद्ध है–उन सबकी मैं सदा वदना करता हूँ ।

२. नत्थि मे सरणं अञ्ञं बुद्धो मे सरणं वर ।
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जय मंगलं ।।

अर्थ— हमारा दूसरा शरण (आश्रय) नही है, केवल बुद्ध ही हमारे सर्वोत्तम शरण है । इस सत्य- वाक्य के प्रताप से हमारा जय मंगल हो ।

यं किंचि रतनं लोके विज्जति विविधा पुथु ।
रतनं बुद्ध समं नत्थि तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ।।

अर्थ—संसार में जितने भी विविध रत्न विद्यमान है उन में कोई भी रत्न बुद्ध रत्न के समान नही है । इस सत्य के प्रताप से मेरा कल्याण हो ।

धर्म–वंदना

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको
एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहीति ।
धम्मं जीवितपरियंतं सरणं गच्छामि ।।

अर्थ—यह धर्म भली प्रकार कहा गया है, यह धर्म इहलोक सम्बन्धी है, इस धर्म का पालन सभी देशों तथा कालों में किया जा सकता है, यह धर्म-निर्वाण तक ले जाने में समर्थ है तथा प्रत्येक बुद्धिमान आदमी इस धर्म का साक्षात कर सकता है । मैं अपने जीवन-पर्यन्त इस धर्म की शरण जाता हूं ।

ये च धम्मा अतीता च ये च धम्मा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये धम्मा, अहं वंदामि सब्बदा ।।

अर्थ—भूतकाल के बुद्ध-प्रदर्शित धर्मों, भविष्यकाल के बुद्ध-प्रदर्शित धर्मों तथा वर्तमान काल के बुद्ध-प्रदर्शित धर्मों की मैं सदा वंदना करता हूं।

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, धम्मो मे सरणं वरं
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जयमंगल ॥

अर्थ—हमारा कोई दूसरा शरण नहीं है। केवल धर्म ही हमारा उत्तम-शरण है। इस सत्य-वाक्य के प्रताप से हमारा जय-मंगल हो।

यं किंचि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु।
रतनं धम्मसमं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ॥

अर्थ—संसार में जितने भी विविध रत्न विद्यमान हैं। उनमें कोई भी रत्न धर्म के समान नहीं है। इस सत्य के प्रताप से हमारा कल्याण हो।

३. संघ-वंदना

सुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, सामीचिपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो। यदिद चत्तारि पुरिसयुगानि, अट्ठपुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसंघो आहुणेय्यो, पाहुणेय्यो, दक्खिणेय्यो, अञ्जलिकरणीय्यो, अनुत्तरं पुञ्ञाखेत्तं लोकस्साति। संघ जिवितपरियन्तं सरणं गच्छामि ॥

अर्थ—भगवान का श्रावक संघ सुन्दर-मार्ग पर चलनेवाला है, आर्य-मार्ग पर चलने वाला है, न्याय-मार्ग पर चलने वाला है तथा समीचीन मार्ग पर चलने वाला है। यही जो आर्य व्यक्तियों की चार जोड़ियाँ हैं—यह जो आठ प्रकार के व्यक्ति हैं, यही भगवान का श्रावक-संघ है। यह संघ आदर करने योग्य है, आतिथ्य करने योग्य है, दान-दक्षिणा देने योग्य तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य है। यह लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र है। मैं अपने जीवन-पर्यन्त संघ की शरण ग्रहण करता हूं।

ये च संघा अतीता च, ये च संघा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये संघा, अहं वंदामि सब्बदा ॥

अर्थ—भूतकाल के बुद्ध-शिष्य-संघ, भविष्यत् काल के बुद्ध-शिष्य-संघ और वर्तमान काल के बुद्ध-शिष्य-संघ की मै सदा वंदना करता हूं ।

उत्तमङ्गेन वंदेहं, संघं च तिविधुत्तमं ।
संघे यो खलितो दोसो, संघो खमतु तं ममं ॥

अर्थ—पाप और मल से रहित मन, वाणी और काया इन तीनों प्रकार से जो उत्तम और पवित्र संघ है, मै नत-मस्तक होकर उसकी वदना करता हूं । यदि अज्ञानतावश मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो संघ उसे क्षमा करे ।

य किंचि रतनं लोके विज्जति विविधा पुथु ।
रतनं संघ सम नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ॥

अर्थ-संसार मे जितने भी विविध रत्न विद्यमान है उनमे से कोई भी संघ रत्न के समान नही है । इस सत्य के प्रताप मे हमारा कल्याण हो ।

इस प्रकार बुद्ध, धर्म और संघ की वंदना तथा गुणानुस्मरण करने के अनन्तर सब ही बुद्धों, चैत्यो, बुद्ध-धातुवाले चैत्यो, बोधिवृक्ष और बुद्ध प्रतिमाओं की वंदना करनी चाहिए ।

वंदामि चेतियं सब्बं, सब्बठानेसु पतिट्ठितं ।
सारीरिकधातु महाबोधिं, बुद्धरूपं सकलं सदा ॥

अर्थ—सब जगहों में प्रतिष्ठित, बुद्ध, चैत्य, बुद्ध-धातु, महाबोधि-वृक्ष और बुद्ध प्रतिमाओं की मैं सदा वंदना करता हूं ।

तदनन्तर अपने साथ अन्यों की कल्याण-कामना करते हुए थोड़ी देर शान्तिपूर्वक चुपचाप ध्यान-भावना कर, निम्नलिखित गाथाएं कहनी चाहिए ।

अहम् अवेरो होमि अव्यापज्जो होमि ।
अनीघो होमि सुखी अत्तानं परिहरामि ।
अहं विय मह्य आचरियुपज्झाया,
मातापितरो हितसत्ता मज्झत्तिक सत्ता
वेरी सत्ता अवेरा होन्तु अव्यापज्जा होन्तु,
अनीघा होन्तु सुखी अत्तानं परिहरन्तु ।
दुक्खा मुच्चन्तु यथालद्ध सम्पत्तितो,
मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥

अर्थ —मैं शत्रु रहित होऊं, क्लेश रहित होऊं, रोग रहित होऊं तथा सुख-पूर्वक रहूं। मेरी ही तरह मेरे आचार्य, उपाध्याय, माता-पिता, हितचिन्तक जन तथा वैरी भी वैर-रहित हों, क्लेश-रहित हों, रोग-रहित हों सुख पूर्वक रहें। वे दुःख से छूट जायं और कर्मानुसार प्राप्त सम्पत्ति से वंचित न हों।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो ।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु मा कंचि दुक्खमागमा ।

अर्थ—सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें, सब कल्याणकर दृष्टि से देखें। किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो। यह ध्यान-भावना व्यक्तिगत भी हो सकती है और सामूहिक भी। इस उद्देश्य से विहार में विशिष्ट अवसरों पर बहुत से बौद्धजन इकट्ठे हों तो मराठी, हिन्दी आदि भाषाओं में बने हुए बौद्ध भजन भी श्रद्धापूर्वक कीर्तन किये जा सकते हैं।

विशिष्ट अवसरों पर बुद्ध-धर्म सम्बन्धी विषयों पर योग्य उपदेष्टाओं द्वारा प्रवचन होने चाहिए।

धार्मिक–संस्कार

(नाम-ग्रहण, केस-कप्पन, विद्यारम्भ, विवाह संस्कार, अन्तिम संस्कार)

जन्म ग्रहण करते समय सभी मनुष्य सामान्य रूप से समान-भाव से जन्म ग्रहण करते है। उनकी शिक्षा और सस्कार ही उन्हें विशेष बनाते हैं। जिस प्रकार सिंहल, स्याम बर्मा आदि बौद्ध-देशों के बौद्ध-जन अपनी-अपनी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार विविध संस्कार करते हैं, इसी प्रकार भारतीय बौद्धों को भी कम-से-कम निम्नलिखित पांच संस्कार अवश्य करने चाहिए।

नाम–ग्रहण

यह संस्कार बालक अथवा बालिका के जन्म के पांचवें दिन के बाद कभी भी किया जाना चाहिए। उस दिन प्रसव-गृह साफ-सुथरा किया जाना चाहिए और प्रसूता को भी स्नान करना चाहिए। इसके बाद बस्ती के विहार में रहने वाले निमन्त्रित भिक्षु या श्रामणेर अथवा किसी अनागरिक धर्म-प्रचारक अथवा किसी ज्येष्ठ सदाचारी उपासक द्वारा प्रसूता एवं उसके उपस्थित कुटुंम्बियों को त्रिशरण सहित पंचशील दिया जाना चाहिए। इस अवसर पर मगल-सूत्र आदि सूत्रों का पाठ भी सुना जा सकता है। तदनंतर बच्चे का नामकरण होना चाहिए। जो कोई भी बच्चे का नामकरण करे वह नाम ऐसा गुण-बोधक होना चाहिए कि उस नाम का ध्यान भी बच्चे के गुणी बनने मे सहायक हो सके। न तो जन्माश्रित जाति-पांति बोधक नाम ही रखे जाने चाहिए और न नामों के साथ शर्मा, वर्मा, गुप्त सदृश ऐसे शब्द ही जोड़े जाने चाहिए जिससे किसी की जाति का बोध हो। इसी प्रकार घुरहू, झगडू, घसीटू आदि तुच्छता और घृणासूचक नाम भी नहीं रखे जाने चाहिए। नामकरण के बाद प्रसूता को बच्चे के लालन-पालन के सम्बन्ध में समुचित शिक्षा दी जानी चाहिए। विहार के बौद्ध भिक्षु आदि का सेवा-सत्कार हो चुकने पर और उनके विदा

हो चुकने पर बच्चे के निकट सम्बन्धी अपने इष्टमित्रों के साथ प्रीति-भोजन कर सकते हैं। इस अवसर पर स्त्रिया संगीत, वाद्य आदि, आमोद-प्रमोद के साथ इस मांगलिक संस्कार को समाप्त कर सकती है।

केस-कप्पन

बच्चे के बाल काटने का यह संस्कार उसके जन्म से तीन साल के भीतर कभी भी किया जा सकता है। यह संस्कार पास के किमी विहार में भी हो सकता है अथवा घरमें भी। सर्वप्रथम किसी भिक्षु या श्रामणेर से अथवा अन्य किसी आदरणीय व्यक्ति से अथवा बच्चे के मामा से उसके दो-चार बाल शुद्ध साफ उस्तेरे से कटवा देने चाहिए। पश्चात् बाल बनाने वाला नाई सावधानी के साथ बच्चे का सिर मुडन कर दे। बालों को आटे की लोई में रखकर उसी से बच्चे का शरीर पोंछ लिया जाए। बादमें उस लोई को या तो कहीं गाड़ देना चाहिए या किसी नदी में बहा देना चाहिए। मुंडन हो जाने पर बच्चे को स्नान कराके नवीन-वस्त्र पहिना दिये जा सकते हैं। इसके बाद माता या पिता को बच्चे को गोद में बिठाकर त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण करना चाहिए और मंगल-सूत्रादि किसी सूत्र का पाठ भी सुनना चाहिए। तदनंतर बालक का केश-कप्पन करने वाले भिक्षु या श्रामणेर अथवा अन्य आदरणीय व्यक्ति की यथा सामर्थ्य सेवा करनी योग्य है। इसके बाद कुटुंम्बी और इष्ट-मित्र मिलकर प्रीति-भोज कर सकते हैं तथा आनन्द-मंगल मना सकते है।

विद्यारम्भ

जन्म के पांचवे वर्ष से लेकर सातवें वर्ष तक कभी भी बालक का विद्यारंभ-संस्कार होना चाहिए। यदि बस्ती में कोई विहार हो तो बच्चे के माता-पिता बच्चे को विहार में ले जायं। यदि कोई विहार न हो और कोई भिक्षु, श्रामणेर अथवा अनागरिक धर्म-प्रचारक मिल सकें तो उन्हें आदरपूर्वक निमन्त्रित कर घर ले आना चाहिए। फिर विहार में अथवा घर पर ही, माता-पिता को अपनी संतान (बच्चा या बच्ची) के साथ

त्रिशरण तथा पंचशील ग्रहण करना चाहिए। इसके बाद किसी स्लेट या पट्टी पर बच्चे का हाथपकडकर "नमो बुद्धाय" लिखवाना चाहिए। यदि वह लिखे अक्षरो को देखकर स्वयं लिख सकता हो तो सुन्दर अक्षरो में लिखे 'नमो बुद्धाय' को स्लेट या पट्टी पर नकल करानी चाहिए। विद्यारंभ-संस्कार के दिन माता-पिता तथा उनकी संतान का शरीर और वस्त्र विशेष रूप से स्वच्छ होने चाहिए। बाद में संतान के गले में एक फूल माला डालनी चाहिए। घरके या पास पडौस के जितने भी स्त्री-पुरुष इस मंगल अवसर पर एकत्रित हो उन्हे मंगल–सूत्र आदि सूत्रों का अर्थ सहित पाठ किसी भी भिक्षु श्रामणेर आदि योग्य पुरुष से सुनना चाहिए। तदनंतर बुद्ध कीर्तन आदि होकर उपस्थित जन-समुह को कुछ प्रसाद आदि दिया जा सकता है।

इसके बाद यदि गांव में कोई विहार हो और वहां विद्यालय हो तो अपनी संतान को उस विद्यालय में और यदि कोई ऐसा विद्यालय न हो तो पास के अन्य किसी विद्यालय में ही भेजना चाहिए। अपनी सामर्थ्यानुसार अपनी संतान को अधिक से अधिक शिक्षा दिलाना माता-पिता का कर्तव्य है।

विवाह संस्कार

सामान्य रूप से सभी जनो के लिए विवाह एक संस्कार है। काम-वासना की पूर्ति विवाह का मुख्य उद्देश्य नही है। मुख्य उद्देश्य है संयमित जीवन बिताना तथा योग्य संतान उत्पन्न करना।

रूढिग्रस्त लोग फलित-ज्योतिष के चक्कर में पड़कर विवाह आदि मंगल कृत्यों की तिथियों का निश्चय करते है। सम्बन्धित लोगों की सुविधा-असुविधा का ख्याल कर ही विवाह आदि की तिथियां निश्चित की जानी चाहिए। इसी प्रकार रूढिग्रस्त लोग 'जाति' का भी विचार करने के अभ्यासी हैं। एक ही जाति में विवाह होने की अपेक्षा 'जाति-अंतर' विवाह ही श्रेष्ठ होता है। बौद्ध जात-पात तो मानते ही नहीं। इस लिए, हर "बौद्ध" को किसी भी दूसरे "बौद्ध" से निस्संकोच विवाह संबंध स्थापित करना चाहिए।

बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, एवं अनमेल विवाह हर तरह से वर्जित और निषिद्ध मानना चाहिए।

इसी प्रकार कर्ज आदि लेकर अपनी सामर्थ्य से बाहर अधिक खर्च करना भी वर्जित है। विवाह की बौध्द विधि संक्षेप में इतनी ही हैं कि विवाह-संस्कार के लिए बने, सजे मंडप के बीचो-बीच तीन आसन होने चाहिए। दो आसन आमने सामने वर-वधु के लिए और तीसरा थोड़ा ऊंचा आसन भिक्षु, श्रामणेर अथवा बौद्धाचार्य के लिए। इनके चारों और सगेसम्बधियों, अन्य रिश्तेदारों तथा सभी निमत्रित आगंतुकों के लिए बैठने की योग्य व्यवस्था होनी चाहिए।

सर्वप्रथम भिक्षु, श्रामणेर अथवा बौद्धाचार्य भावी वर-वधु को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करें। इसके बाद वर वधु को खड़े होकर परस्पर एक-दूसरे के गले में फूलों की माला पहनानी चाहिए। इसके बाद भिक्षु, श्रामणेर या बौद्धाचार्य मंगलसूत्र, जयमंगल गाथा आदि का अर्थ सहित पाठ करके वर-वधु को आशीर्वाद दें और पति-पत्नी को दोनों के कर्तव्यों का अलग-अलग उपदेश भी दें।

भगवान बुद्ध की शिक्षा के अनुसार पति के कर्तव्य है :-

१. अपनी पत्नी का सम्मान करना।

२. अपने आपको व्यभिचार, मादक-द्रव्यों के सेवन और जुए आदि के खेल से दूर रखकर पत्नी का विश्वासपात्र बनना चाहिए।

३. पत्नी के लिये अपेक्षित वस्त्र आदि देकर उसे संतुष्ट रखना चाहिए।

इसी प्रकार पत्नी के कर्तव्य है :-

१. घर के सभी कामों की ठीक व्यवस्था रखना। किसी काम में आलस न करना।

२. अपने आपको अनाचार आदि से बचाये रखकर पति का विश्वासपात्र बनाये रखना।

३. पति के धन-दौलत की रक्षा करना और यथा सम्भव परिवार के सभी लोगों को अपने मधुर व्यवहार से प्रसन्न रखना।

इस अवसर पर मंगल-पाठ के चिन्ह्-स्वरूप वर द्वारा दिया गया मंगलसूत्र भी पहन लिया जा सकता है।

उसके बाद अन्य उपस्थित जन पुष्पहार तथा अन्य उपहार (भेंट) आदि से वर-वधु का सत्कार कर सकते हैं। उपहार देने वाले का नाम जाहिर किया जा सकता है परंतु वर वधु को उपहार देने दिलाने के लिए लाऊडस्पीकर पर प्रेरणा करना किसी भी प्रकार योग्य नही है।

इसके बाद से वधु अपने सौभाग्य के चिन्ह्-स्वरुप कुंकुम आदि लगाना आरम्भ कर सकती है--

इसके बाद विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर किये जानेवाले अन्य कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। जैसे :- सगे सम्बन्धियों व इष्टमित्रों का प्रीति-भोज, गा-बजाकर आनन्द मनाना आदि। यह ध्यान रहे कि इस अवसर पर रूढि-उपासक अंधीपरंपरा के भक्तों की तरह मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला कोई भी कार्य नहीं होना चाहिए।

अन्तिम संस्कार

जिसने भी जन्म ग्रहण किया है, एक न एक दिन उसका मरण निश्चित है। इसलिए अन्य स्वाभाविक बातों की तरह 'मरण' को भी एक प्राकृतिक धर्म मान कर उसका अपने मन पर कम से कम असर होने देना चाहिए।

कोई भी अपना निकट सम्बंधी मरणासन्न हो और आसपास कोई भिक्षु या अन्य कोई धर्म सुनाने वाला उपलब्ध हो तो उसे आदरपूर्वक बुलाकर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि मरणासन्न व्यक्ति को तथा अन्त समय पर उपस्थित उसके सगे-सम्बन्धियों को भी 'धर्म' सुनना मिल सके।

मरणासन्न व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसे नहलाना चाहिए और सामर्थ्यानुसार सुगंधित द्रव्य लगाना तथा कफन आदि ओढा देना चाहिए।

हिन्दू जलाने का ही आग्रह रखते है तथा मुसलमान गाडने का। बौद्धों के लिए जलाना तथा गाडना दोनों एच्छिक है। यह प्रश्न धार्मिक से अधिक आर्थिक है। जो जला सकें वे जलायें, जो जला न सकें उन्हें मुर्दे को गाडने की ही व्यवस्था करनी चाहिए।

मृत शरीर का स्नान और कफन पहनाना आदि हो चुकने पर किसी भिक्षु वा भिक्षुओं वा अन्य जो कोई भी बौद्धाचार्य प्राप्य हों उन्हें बुला लेना चाहिए।

भिक्षु अथवा बौद्धाचार्य आने पर सर्वप्रथम वहां उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषों को त्रिशरण तथा पंचशील प्रदान करेंगे। इसके बाद मृत-व्यक्ति के किसी निकटतम सम्बन्धी के हाथ में एक जल-भरा लोटा होगा और उसके सामने थाली या बड़े प्याले जैसा कोई पात्र होगा। अब उसे धीरे-धीरे धार बांधकर थाली में पानी गिराना होगा। उस समय निमन्त्रित भिक्षु या अन्य कोई बौद्धाचार्य धीरे-धीरे निम्न पालि-गाथाएं कहते जायंगे——

उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवत्तति
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति
यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरं
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति

(जिस प्रकार ऊंची जगह से बहनेवाला पानी नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार यहां जो कुछ दानादि पुण्य-कर्म किया जाता है वही मृत-व्यक्ति के साथ जाता है।)

(जिस प्रकार जल से भरी नदियां सागर को भर देती हैं, उसी प्रकार यहां जो कुछ दानादि पुण्य-कर्म किया जाता है, वही मृत-व्यक्ति के साथ जाता है।)

इस अवसर पर मृत-व्यक्ति के सम्बन्धी सामर्थ्य होने पर कुछ स्वेत-वस्त्र दान कर सकते हैं जो 'मृतक-वस्त्र-दान' कहलाता है।

यह क्रिया हो चुकने पर बौद्ध भिक्षु अथवा अन्य कोई बौद्धाचार्य उपस्थित मंडली को अनित्य-भावना का उपदेश देते हुए इस गाथा का पाठ करेंगे—

अनिच्चा वत संखारा उप्पादवयधम्मिनो
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो

(सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न होना और विनाश को प्राप्त होना उनका स्वभाव है। वे उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होते हैं। उनका शान्त होना ही सुख है।)

इस अनित्य-देशना के अनन्तर मृत-व्यक्ति की देह स्मशान या भूमि-गत करने के स्थान पर ले जाई जानी चाहिये। साथ जानेवाले स्त्री-पुरुष, गम्भीरता के साथ चलेंगे। वे धीरे-धीरे 'अनिच्चा वत संखारा' का जाप और ध्यान करते हुए अथवा गम्भीरतापूर्वक 'बुद्धं सरणं गच्छामि.. धम्मं सरणं गच्छामि... संघं सरणं गच्छामि' कहते हुए जायेंगे। स्मशान पहुंचने पर यदि बौद्ध भिक्षु वा बौद्धाचार्य उपस्थित हों तो वे लोगों को फिर त्रिशरण तथा पंचशील प्रदान करेंगे और अनित्य-भावना का उपदेश करेंगे। यदि घर पर भिक्षु को 'मृतक-वस्त्र' का दान न दिया गया हो तो इस अवसर पर भी दिया जा सकता है।

तत्पश्चात् शव को चिता पर लिटाकर चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित वस्तुओं के साथ चिता को आग लगा दी जाती है।

दाह-क्रिया के तीसरे दिन अस्थि-चयन किया जा सकता है। महान व्यक्तियों की अस्थियां सम्मानार्थ सुरक्षित रखी जाती है। अन्य जनों की अस्थियाँ या तो पास की किसी भी नदी आदि में बहा दी जाती हैं या दाह-क्रिया के स्थान पर ही अथवा अन्यत्र उन पर सामर्थ्यानुसार स्तूपाकार स्मृति-चिन्ह बना दिया जा सकता है।

मरने के पश्चात् सातवें दिन साप्ताहिक-क्रिया और उसके बाद मासिक, छह मासिक या वार्षिक-क्रिया भी की ही जा सकती है।

ये अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही होनी चाहिए। मृत-व्यक्ति का स्मरण तथा 'दान' देने का अवसर ही इनका विशेष उद्देश्य है।

निमन्त्रित भिक्षु या भिक्षुओं को भोजन कराना, उन्हें कोई चीवर आदि वस्त्र दान देना, उनसे उपदेश ग्रहण करना ही ऐसे अवसर पर करने योग्य कार्य हैं।

सामान्य आर्थिक स्थिति वाले गृहस्थों को कर्जा आदि निकाल कर ऐसे 'पुण्य-कार्य' नहीं करने चाहिए।

* * *

त्योहार

पुण्यमय क्षणों का नाम 'त्योहार' है और पुण्यमय स्थानों का नाम 'तीर्थ'।

बौद्ध उपासकों के लिए दोनों पक्षों की दोनों अष्टमियां, अमावस्या तथा पूर्णिमा--ये चार दिन महीने के अन्य दिनों की अपेक्षा विशेष हैं। इन चारों दिनों में और नहीं तो प्रत्येक महीने की पूर्णिमा के ही दिन त्रि-रत्न-पूजा, वंदना, पंचशील या अष्टशील ग्रहण तथा भावना (ध्यान) आदि विशेष रूपसे करनी चाहिए।

पूर्णिमाओं में चार पूर्णिमायें बड़े पुण्य-पर्व हैं। (१) **वैशाखी पूर्णिमा**--यही वह पुण्य-दिवस है जिस दिन भगवान बुद्ध का जन्म हुआ, जिस दिन उन्होंने बुद्धत्व लाभ किया तथा जिस दिन उनका महापरिनिर्वाण हुआ। सिंहल, स्याम, बर्मा आदि देशों में वैशाख-पूर्णिमा ही एक प्रकार से उनका राष्ट्रीय-दिवस है। हार्दिक खेद का विषय है कि भारत में केन्द्रीय सरकार की ओर से आज भी एक दिन की छुट्टी तक नहीं होती।

वैशाख पूर्णिमा का पर्व बौद्धों को बड़े ही उत्साह से मनाना चाहिए क्योंकि वह तेहरा-पवित्र त्योहार है--बुद्ध के जन्म का दिन, बुद्धत्व-लाभ का दिन, महापरिनिर्वाण का दिन।

उस दिन बुद्ध मन्दिरों तथा विहारो में त्रिरत्न पूजा होनी चाहिए, प्रचारार्थ जुलूस निकलने चाहिएँ-सभाएं होनी चाहिएँ।

दया बुद्धि से दरिद्रों को तथा पूज्य-बुद्धि से भिक्षुओं को भोजन-वस्त्र आदि का दान दिया जाना योग्य है।

इस दिन भगवान बुद्ध के पावन चरित्र और उनके धर्म के विषय में व्याख्यानों तथा बुद्ध-कीर्तनों के विशेष आयोजन होने चाहिए।

आषाढ़ पूर्णिमा--यही वह पुण्य-दिवस है जब सिद्धार्थ गौतम ने महामाया की कोख में प्रवेश किया था। यही वह दिन है जब सिद्धार्थ गौतम ने अपना राज-महल त्याग जंगल का रास्ता लिया था अर्थात् महान अभि-निष्क्रमण किया था। यही वह दिन है जब भगवान बुद्ध ने वर्तमान सारनाथ (ऋषितन, मृगदाय) में धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था।

आषाढ-पूर्णिमा के ही दिन बौद्ध भिक्षु तीन महीने तक किसी एक ही विहार में रहने का संकल्प करते हैं। अर्थात् वर्षावास करते हैं।

इस दिन भी त्रिरत्न-वंदना, बुद्ध-कीर्तन आदि होकर धर्म-सभाएं होनी चाहिए।

आश्विन पूर्णिमा---आज के ही दिन बौद्ध भिक्षु अपना तीन महीने का वर्षावास समाप्त कर 'प्रवारणा' करते हैं। इसी कारण इसका नाम 'प्रवारणोत्सव' है। आज के दिन भी त्रिरत्न वंदना, बुद्ध-पूजन, भिक्षुओं को भोजन-दान तथा धर्म श्रवण आदि कार्यक्रम होने चाहिए।

ऐसे सब त्योहारों के अवसर पर बौद्ध उपासक-उपासिकायें पुण्या-नुष्ठान करतीं तथा आनन्द मनाती है।

भारतीय बौद्ध सद्गृहस्थ अन्य भारतीयों के साथ मिलकर वा पृथक नीचे लिखे पर्व भी मना सकते हैं---

विजय-दशमी--आश्विन शुक्ल १० मी। अन्य मतावलम्बियों के लिए चाहे विजय-दशमी 'राम' की 'रावण' पर विजय का उत्सव हो किन्तु हम बौद्धों के लिए यह महाराज अशोक द्वारा आरम्भ की गई धर्म-विजय का पुण्य-दिवस है। इसी दिन महाराज अशोक ने कलिंग की विजय के अनन्तर शस्त्र त्याग संसार की 'धर्म-विजय' की घोषणा की थी। इस दिन महाराज अशोक तथा उनके पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संघमित्रा के सिंहल जाकर धर्म प्रचार कार्य की भी विशेष चर्चा होनी चाहिए।

दीपावली--यह त्योहार कार्तिक कृष्ण अमावस्या को मनाया जाता है। यह ऋतु-पर्व ही है। वर्षा समाप्त हो जाने के बाद घरों की सफाई आवश्यक है।

इस दिन नये धान का लावा, चूरा और बताशे आदि से भगवान बुद्ध की पूजा कर शील-ग्रहण तथा धर्म-श्रवण के लिए इकठ्ठी हुई जनमण्डली को उसका प्रसाद दे दिया जाता है।

रातको घरों में 'दीपावली' मनाई जाती है। अनेक मिथ्या-दृष्टि लोग इस अवसर पर जुवा खेलते है और उसे धर्म-संगत मानते हैं। बौद्ध-उपासकों को उनका अनुकरण नही करना चाहिए।

वसन्त--यह त्योहार माघ सुदी ५ को होता है। यह भी ऋतु-पर्व है। इस दिन आम्र के बौर, सरसों के पीले फूल और यदि सम्भव हो तो केसर पड़ी खीर से बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण तथा धर्म-श्रवण किया जाता है।

बौद्ध भिक्षुओं को केसरिया खीर का भोजन कराया जा सकता है और पीले चीवर का दान।

बौद्ध सद्गृहस्थ भी उस दिन केसरिया-खीर एवं अन्य उत्तमोत्तम पदार्थों का भोजन करते हैं तथा नाना प्रकार से आनन्दोत्सव मनाते हैं।

होली--फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जानेवाला यह त्योहार भी ऋतु-पर्व है। मिथ्या-दृष्टि वाले लोग इस अवसर पर बड़ा असभ्य व्यवहार करते हैं। गन्दी गालियां बकते है। कीचड उछालते हैं। भांग आदि नशीले पदार्थों का सेवन करते है तथा जगह-जगह निरर्थक लकड़ियां जलाते है। बौद्ध उपासकों को यह सब शोभा नहीं देता।

शीतकाल की समाप्ति पर लोग वसन्त के कपड़े धारण करते हैं। नवान्न से बने पदार्थों से भगवान बुद्ध का पूजन-अर्चन कर शील ग्रहण तथा धर्म-श्रवण करना चाहिए। कुसुम, पलाश, पारिजात या हल्दी को ही उबाल कर उसका रंग अपने इष्ट-मित्रों पर छिडक सकते हैं। उसके बाद भली भांति स्नान कर, साफ वस्त्र पहने परस्पर गले मिलना-जुलना कर सकते हैं।

बाबा साहब जयन्ती-- बोधिसत्व-चरित डॉ० बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर की जयन्ती १४ अप्रैल को पड़ती है। उस दिन जुलूस निकालने चाहिए तथा सभाए कर बाबासाहब अम्बेडकर के जीवन चरित तथा बौद्ध धर्म-विषयक भाषण होने चाहिए।

इसी प्रकार बाबासाहब धर्म-दीक्षा-दिवस तथा बाबासाहब निर्वाण-दिवस भी मनाया जाना चाहिए।

बौद्ध तीर्थ

यूँ सामान्यतया न कोई नदी-नाला पवित्र अपवित्र होता है, न कोई पर्वत-पहाड़ पवित्र अपवित्र होता है और न कोई स्थान विशेष पवित्र-अपवित्र होता है, किन्तु किसी भी स्थान वा वस्तु-विशेष से किसी ऐतिहासिक महापुरुष का सम्बन्ध जुड़ जाने से वह स्थान उस महापुरुष के लिए आदर बुद्धि रखने वालों की दृष्टि में 'दर्शनीय' ही नहीं "पूज्य" भी हो जाता है। समस्त संसार के बौद्धों के लिए जो भारत-स्थित स्थान "दर्शनीय" तथा "पूज्य" हैं उनमें से कुछ मुख्य स्थान ये हैं :—

(१) **लुम्बिनी**—यह स्थान आधुनिक नैपाल राज्य की सीमा के भीतर है। जाने के दो मार्ग हैं। एक नौतनवा स्टेशन (जि० गोरखपुर) से दूसरा नौगढ़ (जि० बस्ती) से। नौतनवा स्टेशन से या तो पैदल जाना होता है या घोड़े की सवारी मिल जाती है। भैरवा के रास्ते 'बस' या 'मोटर' से भी आया-जाया जा सकता है। सड़क अच्छी नहीं।

नौगढ़ से लुम्बिनी तक अच्छी पक्की सड़क बन गई है। यात्रियों को इस रास्ते आने जाने में अधिक सुविधा हो सकती है।

धर्मोदय लुम्बिनी कमीटी की ओर से लुम्बिनी में आगत यात्रियों की सुख-सुविधा की व्यवस्था की जाती है।

दर्शनीय तथा पूज्य स्थानों में अशोक-स्तम्भ तथा महामाया देवी का मंदिर है। अशोक-स्तम्भ पर, इस स्थान के बुद्ध का जन्म-स्थान होने की बात पुराने ब्राह्मी अक्षरों तथा प्राचीन मागधी भाषा में लिखी हुई है।

यात्रियों के ठहरने आदि की भरपूर व्यवस्था है।

बुद्ध गया—यह बुद्ध के बुद्धत्व-लाभ की भूमि होने से संसार भर के बौद्धों के लिए सर्वाधिक "पूज्य" है। यहां अशोक का बनवाया हुआ विशाल मन्दिर है। वज्रासन है। बोधि-वृक्ष है। आसपास महाबोधी

सोसायटी का रेस्ट-हाऊस तथा "तिब्बती" और "बर्मी" विहार हैं। एक चीनी बौद्ध मन्दिर भी है। इधर एक विशाल थाई मन्दिर भी बना है। कुछ ही वर्ष हुये थाई सरकार द्वारा एक भव्य रेस्ट हाऊस भी बनवाया गया है।

पड़ोस में शैव महन्त का बड़ा मठ भी है, जिसने कुछ वर्ष पहले तक मन्दिर पर अधिकार कर रखा था। अब मन्दिर की देख-भाल एक 'बुद्ध-गया-कमीटी' द्वारा होती है।

गया रेल्वे स्टेशन से कोई सात मील की दूरी पर फलगु नदी के तट पर बुद्ध-गया का पवित्र तीर्थ-स्थान है।

एकाधिक भिक्षु 'गया' तथा 'बुद्ध-गया' में प्राय: रहते हैं।

सारनाथ--सारनाथ नाम के सुन्दर स्टेशन के एकदम पास। यहीं भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया था, अर्थात् धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था। यहां मूलगन्ध कुटी विहार नाम के दर्शनीय तथा पूजनीय स्थान के अतिरिक्त अनेक-स्तूप और प्राचीन ध्वंसावशेष हैं। विहार हैं--एक बर्मी तथा एक चिनी। विशाल म्युजियम है। कालेज है। औषधालय है। महाबोधी पुस्तकालय है। यात्रियों के लिए बिड़ला धर्मशाला है।

सारनाथ, वाराणसी से कुल ७ मील की दूरी पर स्थित है। इस लिए वाराणसी से भी यात्री आते-जाते रहते हैं।

कुसीनगर-यह स्थान गोरखपुर रेल्वे स्टेशन से कोई ३३ मील और देवरिया से कोई १८ मील है। यहीं आज से २५०० वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था। माथा-कुवर = मतकुमार = सिद्धार्थ गौतम बुद्ध की मूर्ति के अतिरिक्त परिनिर्वाण महास्तूप तथा भगवान के शरीर की दाह-क्रिया का स्थान दर्शनीय तथा पूजनीय है। बोधिसत्वचरित बाबासाहब अम्बेडकर को धर्म-दीक्षा देनेवाले पूज्य चद्रमणि महास्थविर यहीं विराजते हैं।

कुसी नगर में एक बुद्ध-कालेज है। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला की समुचित व्यवस्था है। रेल्वे स्टेशन से बस द्वारा कसिया आने-जाने की भी बढ़िया व्यवस्था है।

श्रावस्ती--यह स्थान बलरामपुर रेस्वे स्टेशन से कोई नौ मील है। प्राचीन समय में यही कोशल-जनपद की राजधानी थी। यही के जेतवन-विहार में भगवान बुद्ध ने सर्वाधिक वर्षावास किये थे। प्राचीन जेतवन विहार के ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त दो आधुनिक चीनी तथा बर्मी बौद्ध मंदिर दर्शनीय हैं।

राजगृह तथा नालंदा--यह दोनों स्थान पटना जिले (बिहार) मे बख्तियारपुर स्टेशन से दक्षिण की ओर जानेवाली बड़ी लाईन के किनारे हैं। राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर भगवान बुद्ध ने कई उपदेश किये थे और नालंदा में तो इतिहास-प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय ही था।

चीनी सरकार की ओर से नालंदा में प्रसिद्ध चीनी-यात्री ह्यून-सांग के नाम पर ह्यूनसांग-भवन बनाने के लिए पांच लाख रुपये का दान दिया गया है।

चीनी यात्री ह्यूनसांग की अस्थियों का एक हिस्सा इस ह्यूनसांग-भवन में प्रतिष्ठित किया जायगा।

वैशाली--यह वज्जियों के प्राचीन गणतन्त्र की राजधानी थी। यहीं भगवान बुद्ध ने अम्बपाली गणिका को धर्म में दीक्षित किया था। यहीं पर स्त्रियों को भी 'भिक्षुणी' बनने की अनुमति मिली थी। यह स्थान मुजफ्फरपुर से कोअी १८ मील दूर है, जहां बस जाती है। इसका वर्तमान नाम 'बसाढ़' है।

कपिल-वस्तु--शोहरत गढ़ रेल्वे स्टेशन से यहां जाया जा सकता है। प्राचीन कपिलवस्तु के अवशेषों में यहां एक अशोक स्तंम्भ ही मुख्य है।

कोशांबी--भरवारी स्टेशन (जिला–इलाहाबाद) से कोसम जाना होता है । यहां भगवान बुद्ध ने काफी समय विहार किया था। प्राचीन कोसम्बी के ध्वंनावशेषों में अभी भी एक अशोक-स्तम्भ मुख्य है ।

अजन्ता तथा एलोरा--यह दोनों स्थान वर्तमान महाराष्ट्र में हैं। जलगांव से अजन्ता तथा दौलताबाद से एलोरा जाया जाता है । दोनों स्थानों में संसार-प्रसिद्ध गुफाओं में भगवान बुद्ध का शुभ्र जीवन-चरित्र चित्रित तथा अंकित किया गया है । यह दोनों स्थान भारतीय शिल्प-कला के अभिमान हैं ।

सांची स्तूप---यह स्थान सांची रेल्वे स्टेशन के पास है । भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्यों–सारिपुत्र तथा महामौद्गल्यायन–की पवित्र अस्थियां यहीं मिली थीं। लगभग १०० वर्ष तक वे लंदन में रहीं, जहां से वापिस लाकर सांची के नव-निर्मित विहार में उनकी पुनः प्राणप्रतिष्ठा की गई है ।

तक्षशिला तथा पेशावर आदि प्राचीन बौद्धनगरों के कुछ अवशेष पाकिस्तान में भी हैं। उक्त ऐतिहासिक प्राचीन बौद्ध तीर्थ-स्थानों के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन आधुनिक स्थानों को बौद्ध तीर्थों की तरह जानना-मानना चाहिए ।

१. मौ (मध्यप्रदेश)--बाबासाहेब डॉ० भीमराव अंबेडकर का जन्मस्थान ।

२. नागपुर (विदर्भ)---बाबासाहेब डॉ० भीमराव अंबेडकर का धर्म-दीक्षा ग्रहण स्थान तथा धर्म प्रचार-कार्य प्रारम्भ करने का स्थान । पिछले वर्ष से दीक्षा-भूमि पर एक "भिक्षु-निवास" भी निर्मित हो चुका है ।

३. शिवाजी पार्क चौपाटी, चैत्य-भूमि बम्बअी-- बाबासाहब डॉ० भीमराव अंबेडकर की अंत्येष्ठी का स्थान ।

शिष्टाचार

ऊँच–नीच भावना का सर्वथा अभाव ही बौद्ध समाज-रचना की विशेषता है।

समाज में कार्य-विभाजन की दृष्टि से वर्ग-विभेद समझ में आता है, किन्तु जन्माश्रित वर्ण-भेद तो वर्ण-व्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

बौद्ध-समाज रचना के अनुसार गृहस्थ (=उपासक) और प्रव्रजित (=भिक्षु) दो ही वर्ग माने जा सकते हैं। उपासक ही प्रव्रजित होकर "भिक्षु" कहलाते हैं और यदि वे किसी भी कारण 'भिक्षु जीवन' व्यतीत न करना चाहें तो पुन: 'उपासक' हो जाते हैं।

बीस वर्ष की आयु से कम के विद्यार्थी यदि प्रव्रज्या ग्रहण कर विहारों में रहते हुए विद्याध्ययन करना चाहते हैं, वे 'श्रामणेर' कहलाते हैं।

कोई भी भिक्षु किसी दूसरे को 'श्रामणेर' की ही दीक्षा दे सकता है। भिक्षु-दीक्षा तो किसी को भी संघ से ही मिल सकती है।

'श्रामणेर' का धर्म अपने आचार्य की सेवा-सुश्रुषा करते हुए विद्याध्ययन करने का है।

उपासकों के लिए 'श्रामणेर' तथा 'भिक्षु' दोनों ही आदर के पात्र है तथा दोनों ही पुण्य-क्षेत्र हैं। 'भिक्षार्थ' आने पर दोनों को ही 'भिक्षा' देना अथवा निमन्त्रण आदि देकर भोजन कराना उपासकों का धर्म है।

उपासकों द्वारा 'श्रामणेर' और 'भिक्षु' दोनों ही पूज्य होने पर भी आदर की भावना की अभिव्यक्ति अपनी अपनी श्रद्धा के अनुरूप और साथ ही प्रव्रजित के गौरव-पूर्ण पद के अनुरूप होती है।

जो भिक्षु दस वर्ष तक 'भिक्षु-जीवन' व्यतीत करता है, वह 'स्थविर' कहलाता है और जिन्हें बीस वर्ष से भी अधिक हो जाते है वे 'महास्थविर' कहलाते हैं।

बौद्ध उपासकों की आपस में एक-दूसरे को 'नमो बुद्धाय' 'जय भीम' या 'नमस्कार' कहकर अपनी शिष्टता तथा बौद्ध होने का परिचय देना चाहिए। यह शिष्ट पुरुषों का आचार है।

कही रास्ते चलने किसी श्रामणेर या भिक्षु से भेंट हो तो "नमस्ते महाराज" या "जयरामजी" की तरह चिल्लाकर कुछ भी कहने की आवश्यकता नही। परिचित श्रामणेर या भिक्षु हो तो रास्ते चलते समय सिर की विनम्रता और चेहरे की मुस्कराहट से ही अपनी शिष्टता की अभिव्यक्ति हो सकती है।

कोई भी प्रव्रजित कहीं खड़ा हो अथवा यथोचित स्थान पर बैठा हो तो दोनों जुड़े हाथ छाती तक उठाकर और सिर झूकाकर नमस्कार करना चाहिए।

अधिक श्रद्धा व्यक्त करनी हो और जमीन पर दरी आदि बिछी हो तो जमीन पर बैठकर घुटने टेक कर पंचांग नमस्कार भी किया जा सकता है।

विहार तथा बुद्ध मन्दिर में पंचांग-प्रणाम करना योग्य है। दोनों घुटने तथा दोनों हाथों की कोहनियों और सिर को भी भूमि से लगाकर जो प्रणाम किया जाता है, वह पंचांग-प्रणाम कहलाता है।

वयोवृद्ध, ज्ञान-वृद्ध स्थविरों तथा महास्थविरों के लिए अधिक से अधिक आदर-सत्कार का भाव दिखाना स्वाभाविक और उचित है।

प्रव्रजितों को नमस्कार करते समय "ओकास वन्दामि भन्ते!" भी कहा जाता है जिसका मतलब है "अनुमती दें, मैं आपको नमस्कार करता हूं।"

प्रव्रजितो उत्तर में प्रायः 'सुखी होतु' कहकर आशीर्वाद देते हैं।

अधिक उपासकों द्वारा एक साथ नमस्कार किये जाने आदि के विशेष अवसरों पर भिक्षुगण यह गाथा कहकर भी आशिर्वाद देते हैं —

अभिवादनसीलिस्स निच्चं बद्धापचायिनो
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयुवण्णो सुखवलं

(बड़ों का आदर करनेवाले अभिवादन शील व्यक्ति को आयु, वर्ण, सुख तथा बल इन चार चीजों की प्राप्ति होती है ।)

आठ जय मंगल-गाथा

बाहु महस्समभिनिम्मित–सायुधन्तं,
गिरिमेखलं अुदित घोर-ससेन मारं।
दानादिधम्मविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय-मंगलानि ॥ १ ॥

(जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने सुदृढ़ आयुधों को धारण किये हुए सहस्त्र भुजावले, गिरिमेखल नामक हाथी पर चढे हुए, अति-घोर सेनाओं वाले मार (कामदेव) को अपने दानादि धर्म-बल से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सबका जय-मंगल हो।)

मारातिरेकमभियुज्झितसब्बरत्तिं,
घोरम्पणालवक मक्खमथद्धयक्खं।
खन्ती सुन्दत विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय-मंगलानि ॥ २ ॥

(जिन मुनीद्र (बुद्ध) ने मार के अतिरिक्त सब रात युद्ध करने-वाले कठोर-हृदय आलवक नामके यक्ष को अपनी शक्ति तथा संयम से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से आप सब का जय-मंगल हो।)

नालागिरिं गजवरं अतिमत्तभूतं,
दावग्गि चक्कमसनीव सुदारुणन्तं।
मेतम्बुसेकविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय-मंगलानि ॥ ३ ॥

(जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने दावग्नि-चक्र और बिजली के समान अत्यन्त दारुण, मदमत नाळगिरि हाथी को अपने-मैत्री-रुप जल से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सबका जय-मंगल हो।)

अुक्खित्त खग्गमतिहत्थसुदारुणन्तं
धावन्ति योजनपथंगुलिमालवन्त ।
अिद्धिभिसंखतमनो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय-मंगलानि ।। ४ ।।

(जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने अत्यन्त दारुण, खड्गधारी, मनुष्यों की अंगलियां काटकर माला बनानेवाले, कई योजन तक स्वयं बुद्ध का भी पीछा करनेवाले अंगुलिमाल को अपने ऋद्धि-बल से जीत लिया, उन भगवान (बुद्ध) के प्रभाव से सब का जय-मंगल हो ।)

कत्वान कट्ठमुदरं अिव गब्भिनिया,
चिंचाय दुट्ठवचनं जनकायमज्झे ।
सन्तेन सोमविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय-मंगलानि ।। ५ ।।

(जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने गर्भिणी की तरह का नकली ऊंचा पेट बनाकर (बुद्ध को बदनाम करनेवाली) चिंचा नामक स्त्री द्वारा प्रचारित अपवाद को अपने शान्त और सौम्य बल से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सब का जय–मंगल हो ।)

सच्चं विहायमतिसच्चक वादकेतुं,
वादाभिरोपितमनं अतिअंधभूतं ।
पञ्ञापदीपजलितो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ।। ६ ।।

जिन मुनीद्र (बुद्ध) ने वाद-विवाद-परायण, अहंकार से अत्यन्त अंधे हुए, वादी सत्य-त्यागी सच्चक को अपने प्रज्ञा-प्रदीप से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सब लोगों का जय-मंगल हो ।)

नन्दोपनन्दभुजगं विबुधंमहिद्धिं
पुत्तेन थेर भूजगेन दमापयन्तो ।

अिध्दूपदेस विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ७ ॥

(जिन मुनींद्र (बुद्ध) ने विविध महाऋद्धि सम्पन्न नन्दोपनन्द नामक भुजंग को अपने (पुत्र-शिष्य) महामौद्गल्यायन के द्वारा ऋद्धि तथा उपदेश बल से जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सब लोगों का जय-मंगल हो।)

दुग्गाहदिट्ठि भुजगेन सुदट्ठहत्थं
ब्रह्मा विसुद्धि जुतिमिद्धि बकाभिधानं।
ज्ञानागदेन विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ८ ॥

(जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने भयानक मिथ्या-दृष्टि रूपी सांप के द्वारा डंसे गये विशुद्ध ज्योति और ऋद्धि-शक्ति सम्पन्न ब्रह्मा को ज्ञानरूपी औषध देकर जीत लिया, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से सब लोगों का जय-मंगल हो।)

अेतापि बुद्ध जयमंगल अट्ठगाथा,
यो वाचको दिने-दिने सरतेमतन्दि।

हित्वाननेक विविधानिचुपद्दवानि,
मोक्खं सुखं अधिगमेय्य नरो सपञ्ञो ॥ ९ ॥

(जो पाठक आलस्य-रहित होकर इन आठ जय-मंगल गाथाओं का स्मरण करेगा, वह बुद्धिमान् नर नाना प्रकार के उपद्रवों का नाश कर मोक्ष-सुख को प्राप्त होगा।)

मंगल-सूत्र

एवं मे सुतं-एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेवतने अनाथपिंडिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञातरा देवता अभिक्कंताय

रत्तिया अभिक्कंतवण्णा केवल कप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसंकमि। उपसंकमित्वा भगवंतं अभिवादेत्वा एकमंतं अट्ठासि। एकमंतं ठिता खो सा देवता भगवंतं गाथाय अज्झभासि–

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डिक के जेतवन विहार में विहार करते थे। उस समय एक प्रकाशमान देवता प्रकाशित रात्रि में सारे जेतवन को आलोकित करता हुआ जहां भगवान थे, वहां गया। पास जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उस देवता ने भगवान् को गाथा द्वारा सम्बोधित किया—

बहु देवा मनुस्सा च मंगलानि अचिन्तयुं।
आकंखमाना सोत्थानं ब्रूहि मंगलमुत्तमं ॥ १ ॥

(बहुत से देवताओं तथा मनुष्यों ने मंगल-बार्तो पर विचार किया है। वे अपना कल्याण चाहते हैं। उन्हें मंगल-बातों का उपदेश दें।)

असेवना च बालानं पंडितानं च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं ॥ २ ॥

(मुर्खो की संगति न करना, पण्डितों की संगति करना, पूजनीय व्यक्तियों की पूजा करना—ये उत्तम मंगल हैं।)

पतिरूपदेसवासो च पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च एतं मंगलमुत्तमं ॥ ३ ॥

(अनुकूल देश में रहना, पूर्वकृत पुण्य-कर्म, आत्म-शान्ति या शुभ-संकल्प—ये उत्तम मंगल है।)

बाहुसच्चं च सिप्पं च विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा एतं मंगलमुत्तमं ॥ ४ ॥

बहुश्रुत (विद्वान) होना, शिल्प सीखना, विनीत होना, सुशिक्षित होना, सुभाषित वाणी--ये उत्तम मंगल है।)

माता पितु उपट्ठान पुत्तदारस्स संगहो।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मंगलमुत्तमं ॥ ५ ॥

(माता-पिता की सेवा, स्त्री-पुत्र का पालन-पोषण, सम्यक् आजीविका —ये उत्तम मंगल है।)

दानंच धम्मचरिया च ञातकानं च संगहो।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ६ ॥

(दान, धर्माचरण, अपने कुटुम्बियों का पालन-पोषण तथा निर्दोष कर्म—ये उत्तम मंगल हैं।)

आरति विरति पापा मज्जपाना च संयमो।
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ७ ॥

(पाप से मानसिक-अरुचि तथा शारीरिक-त्याग, मद्य-पान से विरत रहना, धर्म के विषय में अप्रमादी रहना—ये उत्तम मंगल हैं।)

गारवो च निवातो च, संतुट्ठी च कतञ्ञुता।
कालेन धम्मसवनं एतं मंगलमुत्तमं ॥ ८ ॥

(आदरणीय व्यक्तियों का) गौरव करना, उनके प्रति विनीत रहना, सन्तोष, कृतज्ञता तथा समय-समय पर धर्मोपदेश सुनना—ये उत्तम मंगल हैं।)

खंती च सोवचस्सता, समणानं च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छा, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ९ ॥

(क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन तथा समय-समय पर धर्म की चर्चा—ये उत्तम मंगल हैं।)

तपो च ब्रह्मचरियंच अरियसच्चानदस्सनं ।
निब्बाणसच्छिकिरिया च एतं मंगलमुत्तमं ।। १० ।।

(तप, ब्रह्मचर्य, (चारो) आर्य-सत्यों का दर्शन, निर्वाण का साक्षात –ये उत्तम मंगल हैं ।)

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्त यस्स न कंपति ।
असोकं विरजं खेमं एतं मंगलमुत्तमं ।। ११ ।।

लाभ-अलाभ, यश-अपयश, निन्दा-प्रशंसा तथा सुख-दुःख इन आठ प्रकार के लोक-धर्मों का सम्पर्क होने पर चित्त का चचल न होना, शोक रहित रहना, राग-द्वेष तथा मोह रूपी रज से रहित होना, कल्याण-युक्त होना––ये उत्तम मंगल हैं ।)

एतादिसानि कत्वान सब्बत्थमपराजिता ।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मंगलमुत्तमं ।। १२ ।।

(जो इन मंगलों के अनुसार जीवन व्यतीत करने से सर्वत्र विजयी होते है तथा सर्वत्र कल्याण को प्राप्त होते हैं––ये उनके उत्तम मगल हैं ।)